भाष्यकार : एक परिशीलन

समणी कुसुमप्रज्ञा...

आगमों के व्याख्या-ग्रंथों में भाष्य का दूसरा स्थान है। व्यवहारभाष्य, गाथा ४६९३ में भाष्यकार ने अपनी व्याख्या को भाष्य नाम से संबोधित किया है। निर्युक्ति की रचना अत्यन्त संक्षिप्त शैली में है। उसमें केवल परिभाषिक शब्दों पर ही विवेचन या चर्चा मिलती है। किन्तु भाष्य में मूल आगम तथा निर्युक्ति दोनों की विस्तृत व्याख्या की गई है।

वैदिक परंपरा में भाष्य लगभग गद्य में लिखा गया लेकिन जैन परंपरा में भाष्य प्रायः पद्यबद्ध मिलते हैं, जिस प्रकार निर्युक्ति के रूप में मुख्यतः १० निर्युक्तियों के नाम मिलते हैं वैसे ही भाष्य भी १० ग्रन्थों पर लिखे गए, ऐसा उल्लेख मिलता है। वे ग्रन्थ ये हैं--

१. आवश्यक[१], २. दशवैकालिक, ३. उत्तराध्ययन, ४. बृहत्कल्प[२], ५. पंचकल्प, ६. व्यवहार, ७. निशीथ, ८. जीतकल्प, ९. ओघनिर्युक्ति, १०. पिंडनिर्युक्ति।

मुनि पुण्यविजयजी के अनुसार व्यवहार और निशीथ पर भी वृहद्भाष्य लिखा गया पर आज वह अनुपलब्ध है। इनमें बृहत्कल्प, व्यवहार एवं निशीथ इन तीन ग्रन्थों के भाष्य गाथा परिमाण में वृहद् हैं। जीतकल्प, विशेषावश्यक एवं पंचकल्प परिमाण में मध्यम, पिंडनिर्युक्ति, ओघनिर्युक्ति पर लिखे गए भाष्य अल्प तथा दशवैकालिक एवं उत्तराध्ययन इन दो ग्रन्थों के भाष्य ग्रन्थाग्र में अल्पतम है।

यह भी अनुसंधान का विषय है कि तीन छेदसूत्रों पर वृहद्भाष्य लिखे गए फिर दशाश्रुतस्कंध पर क्यों नहीं लिखा गया, जबकि निर्युक्ति चारों छेदसूत्रों पर मिलती है। संभव है इस ग्रन्थ पर भी भाष्य लिखा गया हो पर वह आज प्राप्त नहीं है।

उपर्युक्त दस भाष्यों में निशीथ, जीतकल्प एवं पंचकल्प को संकलनप्रधान भाष्य कहा जा सकता है। क्योंकि इनमें अन्य भाष्यों एवं निर्युक्तियों की गाथाएँ ही अधिक संक्रांत हुई हैं। जीतकल्प भाष्य में तो जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण स्पष्ट लिखते हैं--कल्प, व्यवहार और निशीथ उदधि के समान विशाल हैं, अतः उन श्रुतरत्नों का बिंदुरूप या नवनीत रूप सार यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है[३]। इस उद्धरण से स्पष्ट है कि जिनभद्रगणि के समक्ष तीनों छेदसूत्रों के भाष्य थे। उदधिसदृश विशेषण मूल सूत्रों के लिए प्रयुक्त नहीं हो सकता, क्योंकि वे आकार में इतने बड़े नहीं हैं।

जिन ग्रन्थों पर निर्युक्तियाँ नहीं हैं वे भाष्य मूल सूत्र की व्याख्या ही करते हैं। जैसे जीतकल्प भाष्य आदि। कुछ भाष्य निर्युक्ति पर भी लिखे गए हैं जैसे - पिंडनिर्युक्ति एवं ओघनिर्युक्ति आदि।

छेदसूत्रों के भाष्यों में व्यवहारभाष्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रायश्चित्त निर्धारक ग्रन्थ होने पर भी इसमें प्रसंगवश समाज, अर्थशास्त्र, राजनीति, मनोविज्ञान आदि अनेक विषयों का विवेचन मिलता है। भाष्यकार ने व्यवहार के प्रत्येक सूत्र की विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की है। बिना भाष्य के केवल व्यवहारसूत्र को पढ़कर उसके अर्थ को हृदयंगम नहीं किया जा सकता है।

भाष्यकार

भाष्यकार के रूप में मुख्यतः दो नाम प्रसिद्ध हैं- १. जिनभद्रगणिक्षमाश्रमण, २. संघदासगणि। मुनिश्री पुण्यविजयजी ने चार भाष्यकारों की कल्पना की है- १. जिनभद्रगणिक्षमाश्रमण, २. संघदासगणि, ३. व्यवहारभाष्य के कर्त्ता तथा ४. बृहद्कल्पभाष्य आदि के कर्त्ता।

विशेषावश्यक भाष्य के कर्त्ता के रूप में जिनभद्रगणि का नाम सर्वसम्मत है, लेकिन बृहत्कल्प, व्यवहार आदि भाष्यों के कर्त्ता के बारे में सभी का मतैक्य नहीं है। प्राचीनकाल में लेखक बिना नामोल्लेख के कृतियाँ लिख देते थे। कालान्तर में यह निर्णय करना कठिन हो जाता था कि वास्तव में मूल लेखक कौन थे? कहीं-कहीं नामसाम्य के कारण भी मूल लेखक का निर्णय करना कठिन होता है।

बृहत्कल्प की पीठिका में मलयगिरि ने भाष्यकार का नामोल्लेख न कर केवल "सुखग्रहणधारणाय भाष्यकारो भाष्यं कृतवान्", इतना सा उल्लेख मात्र किया है[४]। निशीथचूर्णि एवं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्यवहार की टीका में भी भाष्यकार के नाम के बारे में कोई संकेत नहीं मिलता।

पंडित दलसुखभाई मालवणिया ने निशीथपीठिका की भूमिका में अनेक हेतुओं से यह सिद्ध किया है कि निशीथ-भाष्य के कर्त्ता सिद्धसेन होने चाहिए[५]। उन्होंने यह भी संभावना व्यक्त की है कि बृहत्कल्पभाष्य के कर्त्ता भी सिद्धसेन हैं। अपने मत की पुष्टि के लिए वे कहते हैं कि अनेक स्थलों पर निशीथचूर्णि में जिस गाथा के लिए 'सिद्धसेणायरियो वक्खाणं करेति' का उल्लेख है, वही गाथा बृहत्कल्प-भाष्य में 'भाष्यकारो व्याख्यानयति' के संकेतपूर्वक है। अतः निशीथ, बृहत्कल्प एवं व्यवहार तीनों के भाष्यकर्त्ता सिद्धसेन हैं, यह स्पष्ट है। इसके साथ-साथ उन्होंने और भी हेतु प्रस्तुत किए हैं।

मुनि पुण्यविजयजी बृहत्कल्प के भाष्यकार के रूप में संघदासगणि को स्वीकार करते हैं। उनके अभिमत से संघदास गणि नाम के दो आचार्य हुए हैं। प्रथम संघदासगणि जो वाचकपद से विभूषित थे, उन्होंने वसुदेवहिंडी के प्रथम खण्ड की रचना की। द्वितीय संघदासगणि उनके बाद हुए, जिन्होंने बृहत्कल्प लघुभाष्य की रचना की। वे क्षमाश्रमण पद से अलंकृत थे।[६]

आचार्य संघदासगणि भाष्य के कर्त्ता हैं इसकी पुष्टि में सबसे बड़ा प्रमाण आचार्य क्षेमकीर्ति का निम्न उद्धरण है। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है--

कल्पेऽनल्पमनर्घं प्रतिपदमर्पयति योऽर्थनिकुरम्बम्।
श्रीसंघदासगणये, चिन्तामणये नमस्तस्मै॥

"अस्य च स्वल्पग्रन्थमहार्थतया दुःखबोधतया च सकल-त्रिलोकीसुभगङ्करणक्षमाश्रमणनामधेयाभिधेयैः श्रीसंघदासगणिपूज्यैः प्रतिपदप्रकटतिसर्वज्ञाज्ञाविराधनासमुद्भूतप्रभूतप्रत्यपायजालं निपुणचरणकरणपरिपालनोपायगोचरविचारवाचालं सर्वथा दूषणकरणेनाप्यदूष्यं भाष्यं विरचयांचक्रे।"

इस उल्लेख के सन्दर्भ में मुनि पुण्यविजयजी का मत संगत लगता है कि बृहत्कल्प के भाष्यकार आचार्य संघदासगणि होने चाहिए। यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि बृहत्कल्प-भाष्य एवं व्यवहारभाष्य के कर्त्ता एक ही हैं, क्योंकि बृहत्कल्प -भाष्य की प्रथम गाथा में स्पष्ट निर्देश है कि 'कप्पव्ववहाराणं वक्खाणविहिं पवक्खामि'।

टीकाकार ने इस गाथा के लिए 'सूत्रस्पर्शिकनिर्युक्तिभणितमिदम्' का उल्लेख किया है। चूर्णिकार ने इस गाथा के लिए 'आयरिओ भासं काउकामो आदावेव गाथासूत्रमाह' का उल्लेख किया है। यहाँ प्राचीनता की दृष्टि से चूर्णिकार का मत सम्यक् लगता है। चूर्णिकार के मत की प्रासंगिकता का एक हेतु यह भी है कि व्यवहारभाष्य के अंत में भी 'कप्पव्ववहाराणं भासं' का उल्लेख मिलता है। अतः यह गाथा भाष्यकार की होनी चाहिए, जिसमें उन्होंने प्रतिज्ञा की है कि मैं कल्प और व्यवहार की व्याख्यान-विधि प्रस्तुत करूँगा। वक्खाणविधि शब्द भी भाष्य की ओर ही संकेत करता है, क्योंकि निर्युक्ति अत्यंत संक्षिप्त शैली में लिखी गई रचना है। उसके लिए वक्खाणविहिं शब्द का प्रयोग नहीं होना चाहिए अतः यह निर्युक्ति की गाथा नहीं, भाष्य की गाथा होनी चाहिए। कप्पव्ववहाराणं भाष्यकार के इस उल्लेख से यह स्पष्ट ध्वनित हो रहा है कि उन्होंने केवल बृहत्कल्प एवं व्यवहार पर ही भाष्य लिखा, निशीथ पर नहीं।

पंडित दलसुख भाई मालवणिया निशीथ-भाष्य के कर्ता सिद्धसेनगणि को स्वीकारते हैं, क्योंकि निशीथ-चूर्णिकार ने अनेक स्थलों पर 'अस्य सिद्धसेनाचार्यो व्याख्यां करोति' का उल्लेख किया है। पर इस तर्क के आधार पर सिद्धसेन को भाष्यकर्त्ता मानना संगत नहीं लगता। क्योंकि चूर्णिकार ने ग्रन्थ के प्रारंभ और अंतिम प्रशस्ति में कहीं भी सिद्धसेन का उल्लेख नहीं किया है। यदि सिद्धसेन भाष्यकर्त्ता होते तो अवश्य ही चूर्णिकार प्रारंभ में या ग्रन्थ के अंत में उनका नामोल्लेख अवश्य करते। इस संबंध में हमारे विचार से निशीथ संकलित रचना होनी चाहिए, जिसकी संकलना आचार्य सिद्धसेन ने की।अनेक स्थलों पर निशीथ-निर्युक्ति की गाथाओं को स्पष्ट करने के लिए उन्होंने व्याख्यान-गाथाएँ भी लिखीं। अतः निशीथ मौलिक रचना न होकर संकलित रचना ही प्रतीत होती है। यदि इसमें से अन्य ग्रन्थों की गाथाओं को निकाल दिया जाए तो मूल गाथाओं की संख्या बहुत कम रहेगी। दस प्रतिशत भाग भी मौलिक ग्रन्थ के रूप में अवशिष्ट नहीं रहेगा। पंडित दलसुखभाई मालवणिया भी इस तथ्य को स्वीकार करते हुए कहते हैं निशीथभाष्य के विषय में कहा जा सकता है कि इन समग्र गाथाओं की रचना किसी एक आचार्य ने नहीं की। परंपरा से प्राप्त गाथाओं का भी यथास्थान भाष्यकार ने उपयोग किया है और अपनी ओर से नवीन गाथाएँ बनाकर जोड़ी हैं। (निपीभू पृ. ३०, ३१)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाष्यकार ने इस ग्रन्थ की रचना कौशल देश में अथवा उसके पास के किसी क्षेत्र में की है, ऐसा अधिक संभव लगता है। भारत के १६ जनपदों में कौशल देश का महत्त्वपूर्ण स्थान था[८]। प्रस्तुत भाष्य में कौशल देश से संबंधित दो-तीन घटनाओं का वर्णन है, इसके अतिरिक्त सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि ग्रन्थकार जहाँ क्षेत्र के आधार पर मनोरचना का वर्णन कर रहे हैं, वहाँ कहते हैं 'कोसलएसु अपावं सतेसु एक्कं न पेच्छामो' अर्थात् कौशल देश में सैकड़ों में एक व्यक्ति भी पापरहित नहीं देखते हैं। यहाँ पेच्छामो क्रिया ग्रन्थकार द्वारा स्वयं देखे जाने की ओर इंगित करती है।

भाष्य का रचनाकाल

भाष्यकार संघदासगणि का समय भी विवादास्पद है। अभी तक इस दिशा में विद्वानों ने विशेष ऊहापोह नहीं किया है। संघदासगणि आचार्य जिनभद्र से पूर्ववर्ती हैं। इस मत की पुष्टि में अनेक हेतु प्रस्तुत किए जा सकते हैं--

जिनभद्रगणि के विशेषणवती ग्रन्थ में निम्न गाथा मिलती है-

सीहो चेव सुदाढो, जं रायगिहम्मि कविलबडुओ त्ति।
सीसइ ववहारे गोयमोवसमिओ स णिक्खंतो।।[९]

व्यवहार भाष्य में इसकी संवादी गाथा इस प्रकार मिलती है-

सीहो तिविट्ठु निहतो, भमिउं रायगिह कविलबडुग त्ति।
जिणवीरकहणमणुवसम गोतमोवसम दिक्खाय।।[१०]

विशेषणवती में 'ववहारे' शब्द निश्चित रूप से व्यवहारभाष्य के लिए प्रयुक्त हुआ है, क्योंकि मूलसूत्र में इस कथा का कोई उल्लेख नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि आचार्य जिनभद्रगणि के समक्ष व्यवहारभाष्य था।

विशेषावश्यकभाष्य की रचना व्यवहारभाष्य के पश्चात् हुई इसका एक प्रबल हेतु यह है कि बृहत्कल्प एवं व्यवहारभाष्य कर्त्ता के समक्ष यदि विशेषावश्यक भाष्य होता तो वे अवश्य विशेषावश्यकभाष्य की गाथाओं को अपने ग्रन्थ में सम्मिलित करते, क्योंकि वह एक आकरग्रंथ है, जिसमें अनेक विषयों का सांगोपांग वर्णन प्राप्त है। जबकि व्यभा. एवं वृभा. में अन्य भाष्य पंचकल्प, निशीथ आदि की सैकड़ों गाथाएँ संवादी हैं। व्यवहारभाष्य की मणपरमोधिपुलाए गाथा विभा. में मिलती है। वह व्यवहारभाष्य की गाथा है और विशेषावश्यकभाष्य के कर्त्ता ने उद्धृत की है, ऐसा प्रसंग से स्पष्ट प्रतीत होता है। अतः व्यवहारभाष्य विशेषावश्यकभाष्य से पूर्व की रचना है, ऐसा मानने में कोई आपत्ति प्रतीत नहीं होती।

व्यवहारभाष्य के कर्त्ता जिनभद्र से पूर्व हुए इसका एक प्रबल हेतु यह है कि जीतकल्प - चूर्णि में स्पष्ट उल्लेख है कि कल्प, व्यवहार, निशीथ आदि में प्रायश्चित्त का इतने विस्तार से निरूपण है कि पढ़ने वाले का मति-विपर्यास हो जाता है। शिष्यों की प्रार्थना पर जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण ने संक्षेप में प्रायश्चित्तों का वर्णन करने हेतु जीतकल्प की रचना की[११]। यहाँ कल्प, व्यवहार शब्द का मूलसूत्र से तात्पर्य न होकर उसके भाष्य की ओर संकेत होना चाहिए क्योंकि मूल ग्रन्थ परिमाण में इतने बृहद् नहीं हैं। दूसरी बात व्यवहारभाष्य की प्रायश्चित्त संबंधी अनेक गाथाएँ जीतकल्प में अक्षरशः उद्धृत हैं। जैसे--

जीतकल्प	व्यभा.	जीतकल्प	व्यभा.
१८	११०	२२	११४
१९	१११	३१,३२	तु. १०,११

निशीथभाष्य जिनभद्रगणि से पूर्व संकलित हो चुका था इसका एक प्रमाण यह है कि निभा. में प्रमाद-प्रतिसेवना के सन्दर्भ में निद्रा का विस्तृत वर्णन मिलता है। स्त्यानर्द्धि निद्रा के उदाहरण के रूप में निभा. (१३५) में 'पोग्गल मोयग दंते' गाथा मिलती है। यह गाथा विशेषावश्यक-भाष्य (२३५) में भी है। लेकिन वहाँ स्पष्ट प्रतीत हो रहा है कि व्यञ्जनावग्रह के प्रसंग में विशेषावश्यक-भाष्यकार ने यह गाथा निभा. से उद्धृत की है। विभा. में यह गाथा प्रक्षिप्त सी लगती है। कुछ अंतर के साथ यह गाथा वृभा. (५०१७) में भी मिलती है।

पंडित दलसुख भाई मालवणिया ने जिनभद्र का समय छठी-सातवीं शताब्दी सिद्ध किया है। अतः भाष्यकार संघदासगणि का समय पाँचवीं, छठी शताब्दी होना चाहिए[१२]।

भाष्यग्रन्थों का रचनाकाल चौथी से छठी शताब्दी तक ही होना चाहिए। यदि भाष्य का रचनाकाल सातवीं शताब्दी माना जाए तो आगे के व्याख्याग्रन्थों के काल-निर्धारण में अनेक विसंगतियाँ उत्पन्न होती हैं। प्राचीनकाल में आज की भाँति मुद्रण की व्यवस्था नहीं थी, अतः हस्तलिखति किसी भी ग्रन्थ को प्रसिद्ध होने में कम से कम एक शताब्दी का समय तो लग ही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाता था। सातवीं शताब्दी में भाष्य लिखे गए और आठवीं में हरिभद्र ने टीकाएँ लिखीं फिर चूर्णि के समय में अंतराल बहुत कम रहता है।

निर्युक्तिकार के रूप में हमने चतुर्दशपूर्वी प्रथम भद्रबाहु को स्वीकार किया है, जिनका समय वीरनिर्वाण की दूसरी शताब्दी है[१३]। भाष्य का समय विक्रम की चौथी-पाँचवीं, चूर्णि का सातवीं तथा टीका का आठवीं से तेरहवीं शताब्दी तर्कसम्मत एवं संगत लगता है।

निशीथ, बृहत्कल्प एवं व्यवहार इन तीन छेदसूत्रों के भाष्य के रचनाक्रम के बारे में पंडित दलसुख भाई मालवणिया का अभिमत है कि सबसे पहले बृहत्कल्पभाष्य रचा गया। उसके बाद निशीथभाष्य तथा अंत में व्यवहारभाष्य की रचना हुई। लेकिन हमारे अभिमत से निशीथभाष्य की रचना या संकलना सबसे बाद में हुई है। उसके कारणों की चर्चा हम पहले कर चुके हैं। भाष्यकार ने व्यवहार से पूर्व बृहत्कल्प की रचना की, यह बात उनकी प्रतिज्ञा से स्पष्ट है--कप्पव्ववहाराणं वक्खाणविहिं पवक्खामि। इसके अतिरिक्त व्यवहारभाष्य में अनेक स्थलों पर पुव्वुत्तो, वुत्तो, जह कप्पे, वण्णिया कप्पे आदि का उल्लेख मिलता है। व्यवहार-भाष्य की निम्न गाथाओं में बृहत्कल्प की ओर संकेत हैं। इनमें कुछ उद्धरण बृहत्कल्प एवं कुछ बृहत्कल्पभाष्य की ओर संकेत करते हैं--

११७२, १२२६, १३३९, १७४८, १८३३, १९३३,२१७१, २१७३, २२७९, २२९६, २५०९, २५२३, २६६२, २८०५, २८०६, २८१७, २९२७, २९८३, ३०६२, ३२४७, ३३१३, ३३५०, ३८९६, ४२३१ , ४३१४ आदि।

यह निश्चित है कि आगमों पर लिखे गए व्याख्याग्रन्थों का क्रम इस प्रकार रहा है--निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि एवं टीका। लेकिन अलग-अलग ग्रन्थोंके व्याख्या-ग्रन्थों को लिखने में इस क्रम में व्यत्यय भी हुआ है। उदाहरण के लिए पंचकल्प-भाष्य की निम्न गाथा को प्रस्तुत किया जा सकता है--

परिजुण्णेसा भणिता, सुविणा देवीए पुप्फचूलाए।
नरगाण दंसणेणं, पव्वज्जाऽऽवस्सए वुत्ता।।१४

पुष्पचूला की कथा विशेषावश्यक-भाष्य में नहीं है, किन्तु आवश्यकचूर्णि में है। इससे सिद्ध होता है है कि पंचकल्प - भाष्यकार के समक्ष आवश्यक चूर्णि थी।

इसी प्रकार जीतकल्प की चूर्णि के बाद उसका भाष्य रचा गया क्योंकि चूर्णि केवल जीतकल्प की गाथाओं की ही व्याख्या करती है। उसमें भाष्य का उल्लेख नहीं है। यदि चूर्णिकार के समक्ष भाष्य-गाथाएँ होतीं तो वे अवश्य उनकी व्याख्या करते। चूर्णिकार ने व्यवहारभाष्य की अनेक गाथाओं को उद्धृत किया है।

इस प्रसंग में निभा. ५४५ की उत्थानिका का उल्लेख भी विद्वानों को इस दिशा में सोचने के लिए प्रेरित करता है। वहाँ स्पष्ट उल्लेख है कि 'सिद्धसेणायरिएण जा जयणा भणिया तं चेव संखेवओ भद्दबाहू भण्णति' इस उद्धरण से स्पष्ट है कि यहाँ द्वितीय भद्रबाहु की ओर संकेत हैं। प्रथम भद्रबाहु तो सिद्धसेन की रचना की व्याख्या नहीं कर सकते, क्योंकि वे उनसे बहुत प्राचीन हैं। बृहत्कल्पभाष्य (२६११) में भी इस गाथा के पूर्व टीकाकार उल्लेख करते हैं कि 'या भाष्यकृता सविस्तरं यतना प्रोक्ता तामेव निर्युक्तिकृदेकगाथया संगृह्याह।' यह उद्धरण विद्वानों के चिंतन या ऊहापोह के लिए है। इसके आधार पर यह संभावना की जा सकती है कि सिद्धसेन द्वितीय भद्रबाहु से पूर्व पाँचवीं शती के उत्तरार्द्ध में हो गए थे। द्वितीय भद्रबाहु के समक्ष निर्युक्तियाँ तथा उन पर लिखे गए कुछ भाष्य भी थे।

मुनि पुण्यविजयजी ने दशवैकालिक की अगस्त्यसिंह चूर्णि को दशवैकालिकभाष्य से पूर्व की रचना माना है तथा उसके कुछ हेतु भी प्रस्तुत किए हैं[१५]।

भाषा की दृष्टि से भी भाष्यरचना की प्राचीनता सिद्ध होती है। अपभ्रंश की प्रवृत्ति लगभग छठी शताब्दी से प्रारंभ होती है लेकिन भाष्यों में अपभ्रंश के प्रयोग ढूँढने पर भी नहीं मिलते। इसके अतिरिक्त महाराष्ट्री का प्रभाव भी कम परिलक्षित होता है। भाष्यसाहित्य में वर्णित विषयवस्तु मुद्राएँ, घटनाप्रसंग एवं सांस्कृतिक तथ्य भी इसके रचनाकाल को चौथी, पाँचवीं शताब्दी से पूर्व या आगे का सिद्ध नहीं करते। अतः भाष्यकार का समय विक्रम की चौथी, पाँचवीं शताब्दी होना चाहिए।

भाष्य में वर्णित विषय अन्य ग्रन्थों में भी संक्रांत हुए हैं। जैसे व्यवहार के भेद (आज्ञा, श्रुत आदि) पुरुषों के प्रकार एवं आलोचना से संबंधित अनेक प्रकरण ठाणं एवं भगवती में प्राप्त होते हैं। ये सभी प्रकरण आगम-संकलनकाल में व्यवहार से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संगृहीत किए गए हैं, ऐसा पूर्वापर के प्रकरण से प्रतीत होता है। भाष्यसाहित्य की अनेक गाथाएँ दिगंबर-ग्रन्थों में भी संक्रांत हुई हैं। भगवती-आराधना एवं मूलाचार में भाष्य-साहित्य की अनेक गाथाएँ शब्दशः मिलती हैं। व्याख्याग्रन्थों में भाष्य-साहित्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है। ऐतिहासिक, राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि सेअनेकमहत्त्वपूर्ण तथ्य भाष्यसाहित्य में मिलते हैं। भाष्यसाहित्य का अनुशीलन एवं पर्यवेक्षण अनुसंधान के क्षेत्र में अनेक नई दिशाएँ खोलने वाला होगा, ऐसा प्रतीत होता है।

सन्दर्भ

१. आवश्यक पर तीन भाष्यों का उल्लेख मिलता है- मूलभाष्य, भाष्य एवं विशेषावश्यकभाष्य।

२. बृहत्कल्प पर भी बृहद् एवं लघु भाष्य लिखा गया। बृहद्भाष्य तीसरे उद्देशक तक मिलता है, वह भी अपूर्ण है।

३. कप्पव्ववहाराणं उदधिसरिच्छाण तह णिसीहस्स। सुतरयणबिन्दुणवणीतभूतसारेस णातव्वो ।।

- जीतकल्पभाष्य, २६०५

४. बृहत्कल्पपीठिका, टी.पृ. २

५. निशीथपीठिका, भूमिका, पृ. २

६. बृभा. भाग - ६, भूमिका पृ. २०

७. अंगुत्तरनिकाय, १.२१३

८. व्यभा. २९५९

९. विशेषणवती, गा. ३३

१०. व्यभा. २६३८

११. जीतकल्प चूर्णि, पृ. १,२

१२. द्वितीय भद्रबाहु ने निर्युक्तियों में परिवर्तन एवं परिवर्धन भी किया है, जिनका समय विक्रम की छठी शताब्दी है।

१४. पंचकल्पभाष्य, ६०९

१५. दशवैकालिक अगस्त्यसिंहचूर्णि, भूमिका, पृ. १५-१७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org